गाँधी : आस्था और अनुकरण

डॉ0 धीरज कुमार चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर,
ईश्वर शरण पी0जी0 कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

गाँधी जैसे भी रहे हों, उनके साथ किसी के कितने ही मतभेद क्यों न रहे हों, उनकी कार्य–पद्धति के प्रति विश्वास–अविश्वास, उनके विचारों के प्रति आस्था–अनास्था होना अलग बात है, गाँधी का समर्पित व्यक्तित्व और उनका अपने संकल्प की सिद्धि की साधना में रत रहना सर्वथा अलग बात। गाँधी ने गलतियाँ नहीं की, यह बात दावे के साथ न स्वयं गाँधी कह सकते थे न उनके अनुयायी और न इतिहास, लेकिन इस बात पर मतभेद की बहुत कम गुंजाइश होगी कि गाँधी अपने संकल्प और लक्ष्य के प्रति ईमानदार थे और जब–जब उनके लक्ष्य और संकल्प पर संकट आया वे अपनी जान तक को जोखिम में डालने से नहीं चूके।[1] गाँधी होना और शहीद की अंतः अभिव्यक्ति होने का एक ही उदाहरण पर्याप्त है। देश आजाद हो रहा था, अंग्रजों का यूनियन जैक उतर रहा था, आजाद भारत का चक्रांकित तिरंगा आकाश में ऊपर उठ रहा था, दुल्हन बनी दिल्ली स्वातंत्र्य देवता के साथ सुहागरात मानने के लिए सजी–धजी स्वर्ग की अप्सरा सी लग रही थी। भारत अपनी नियति के साथ मिल रहा था। अंग्रेज जा रहे थे, जवाहर लाल दिल्ली में प्रधानमंत्री पद की शपथ ले रहे थे, सभी कांग्रेसी राष्ट्रपति भवन और विजय चौक पर जमा थे, लेकिन गाँधी? गाँधी कहाँ थे? देश को आजादी का दिन दिखाने वाले गाँधी दिल्ली में नहीं, लहूलुहान नोआखाली में थे–सर्वथा अकेले, असुरक्षित, दंगाइयों और हत्यारों के बीच खून के कीचड़ में घूम रहे थे गाँधी।[2] प्रतिहिंसा के उस माहौल में गाँधी सुरक्षा व्यवस्था की माँग कर सकते थे, लेकिन ऐसा नहीं किया उन्होंने।

यही होता है गाँधी होना। इसे ही कहते हैं शहीद की जिजीविषा। जिसकी जिजीविषा जाग्रत होती है वह सवाल नही पूछता, वह सवाल का जवाब, समस्या का समाधान, इतिहास का निष्कर्ष, बुद्धिजीवी का विश्लेषण और कर्मधारा का पवित्र प्रवाह होता है।[3]

नयी सहस्राब्दी में गाँधी की अहमियत क्या होगी? इस सीधे सपाट अकादमिक सवाल का जवाब, इससे भी कहीं ज्यादा सीधा और सपाट है। सहस्राब्दी और शताब्दी के समापन (जैसा कि दुनियाँ का एक बड़ा हिस्सा कह रहा है) पर पूरी दुनियाँ में जो सैकड़ों सर्वेक्षण हुए हैं उनमें से ज्यादातर में 'शताब्दी पुरुष' महात्मा गाँधी को ही चुना गया है।[4] जिस किसी भी सर्वेक्षण में वह पहली जगह नहीं हासिल कर

पाये, उसमें वे अनिवार्य रूप से दूसरी जगह पर मौजूद हैं। इतने ठोस तथ्यों के बावजूद क्या कुछ सोचने को बचता है कि गाँधी की अहमियत क्या है या भविष्य में क्या होगी? अपनी हत्या के सालों बाद भी गाँधी की न केवल प्रासंगिकता बनी हुई बल्कि बढ़ रही है। कम से कम इन तथ्यों का मतलब तो यही है।[5]

मगर सवाल है कि क्या तथ्य हमेशा सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं? निश्चित रूप से कई मामलों में वे ऐसा नहीं करते। इसमें कोई दो राय नहीं है कि गाँधी का आकर्षण बढ़ रहा है, गाँधी के विचारों को बड़े–बड़े लोगों द्वारा अपने भाषणों में उद्धृत करने का फैशन बढ़ रहा है।[6]

पिछले दिनों राष्ट्रमण्डल देशों के सम्मेलन में अधिकतर राष्ट्राध्यक्षों ने अपने भाषणों की या तो शुरुआत या अंत गाँधी के विचारों से ही की। गौर्बाच्चौफ से लेकर गनेशी लाल तक के भाषणों को पढ़–सुन लीजिए, गाँधी उनमें मौजूद मिल जाएँगें।[7]

दिल्ली के एक अंग्रेजी दैनिक को दिये गये साक्षात्कार में बेन किंग्सले (बहुचर्चित गाँधी फिल्म में गाँधी की भूमिका निभाने वाले) ने कहा था कि गाँधी फिल्म के प्रदर्शित होने के बाद लंदन में चार दर्जन खादी की दुकानें खुल गयीं और लगभग हर डिपार्टमेंटल स्टोर में खादी बिकने लगी। पिछले दिनों अमरीका की एक अदालत के जज ने एक अपराधी को सजा के रूप में गाँधी दर्शन से संबंधित किताबों को पढ़ने और तीन साल तक गाँधीवादी जीवन शैली के मुताबिक जीवन जीने का आदेश दिया (क्या गाँधीवादी जीवन शैली एक सजा है?)[8]।

ये तमाम तथ्य इस बात को जोर देकर रेखांकित कर रहे हैं कि गाँधी की और गाँधीवाद की प्रासंगिकता निरंतर बढ़ रही है। मगर गहराई में उतर कर देखा जाए तो यह एक अधूरी सच्चाई है। यह सच्चाई नहीं है बल्कि सच लगने वाला एक झूठा भ्रम है।[9] इसे कई स्तरों पर साबित किया जा सकता है। सबसे पहले विश्व नेताओं की कथनी और करनी को लिया जाए। बिल क्लिंटन, जो लगभग अपने हर भाषण में गाँधी को सघन प्रतिबद्धता के साथ याद करते रहे, क्या वह या उनका देश गाँधी के किसी एक भी विचार पर अमल करता है? गाँधी के तमाम विचारों के बीच जो सबसे केन्द्रीय विचार है, वह अंहिसा का विचार है। गाँधी के किसी प्रशंसक या गाँधीवाद को दुनिया और जीवन का सर्वश्रेष्ठ विचार बताने वाले किसी देश से क्या अहिंसावादी होने की उम्मीद नहीं की जाएगी? इस अपेक्षा की कसौटी में अमेरीका को अगर रखकर देखें तो एक क्षण में ही साफ हो जायेगा कि अमरीका या उसका राष्ट्रपति गाँधी के समर्थक हैं या विरोधी।[10]

गाँधी अपने जीवन में ही बहुत ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व बन चुके थे। अमरीकी समाज की बहुत इच्छा थी कि गाँधी उनके देश का दौरा करें। गाँधी के मित्र और मुरीद अल्बर्ट आइंस्टीन ने भी उन्हें कई पत्रों में

अमरीका आने के लिए अनुरोध किया, लेकिन गाँधी हमेशा अमरीका जाने की बात को मुस्कुराकर टाल दिया करते थे। जब एक बार आइंस्टीन ने उनसे इस प्रस्ताव को बार–बार टालने के बारे में पूछा तो उन्होंने आइंस्टीन को लिखा, 'मैं और अमरीका एक दूसरे से विपरीत ध्रुवों पर खड़े हैं। मैं अहिंसावादी हूँ, अमरीका को सारी अहमियत ही शक्तिशाली होने के नाते हैं। मैं सादे जीवन का पक्षधर हूँ, अमरीकी समाज अपनी उपभोग वृत्ति के लिए ख्यात है। मैं समझता हूँ ऐसे में मेरा अमरीका जाना, अमरीकी लोगों को संबोधित करना व्यर्थ हैं।'[11] ऐसा नहीं माना जा सकता कि महात्मा गाँधी ने जब अमरीका को यह पत्र लिखा था तब के मुकाबले आज अमरीका में जिस किस्म का उपभोक्तावाद है, उस किस्म के उपभोक्तावाद की शायद उस समय गाँधी ने कल्पना भी नहीं की होगी जब उन्होंने आइंस्टीन को यह पत्र लिखा था। आज अमरीका ताकत का जिस तरह से व्यापार करता है, उस समय शायद दूर–दूर तक इसके लक्षण भी नहीं रहे होंगे। तमाम बहुप्रचारित संधि, कटौतियों के बावजूद आज भी अमरीका के पास 8500 से ज्यादा विध्वंसक परमाणु अस्त्र मौजूद हैं। इनकी ताकत का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सैन्य विशेषज्ञों के मुताबिक ये अस्त्र पूरी दुनियाँ को 100 बार नष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।[12]

सवाल है कि क्या हथियारों की होड़ और गाँधीवाद पर बढ़ती आस्था, ये दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं? साम्राज्यवाद के नये से नये तरीके विकसित करना और सबको स्वतंत्र देखने वाली गाँधी दृष्टि, क्या दोनों स्थितियाँ एक साथ अस्तित्व बनाये रख सकती हैं? ऐसा कभी नहीं हो सकता। खादी पहन लेने भर से कोई गाँधीवादी नहीं हो सकता।[13] अगर इस तरह होता तो हमारे देश में गाँधीवादियों की भरमार होती , हर नेता गाँधीवादी होता, लेकिन हम जानते हैं कि हमारे देश में खादी पहनने वालों की वास्तविकता क्या है? पश्चिम में और पूरी दुनियाँ में भी हकीकत यही है। खादी पहनना पारंपरिक फैशन से अब का विकल्प तो हो सकता है, लेकिन उससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि दुनियाँ में गाँधी की और उनके विचारों की प्रासंगिकता बढ़ रही है।[14] सुकरात ने कहीं कहा था कि 'बहुमत' मूर्खों का होता है। हम सुकरात से सहमत हों या न हों लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि सर्वेक्षण में हिस्सा लेने वाले और अपने मतों से निर्णय बनाने वाले लोग भी अपनी कथनी और करनी में उतने ही विरोधाभासी हैं जितने अमरीकी राष्ट्रपति और उनका देश अमरीका।

दरअसल इस वैचारिक शून्य और विचारधारात्मक एकरसता के दौर में, खासकर ऐसी स्थिति में जबकि समाजवाद पराजित घोषित किया जा चुका है और पूँजीवाद अपने ही सवालों से लाचार है, गाँधीवाद हर तरह के हमलों में 'ढ़ाल' बन चुका है। गाँधीवाद की रहस्यमयी उदारता ने, जिसके लिए सही शब्द 'ढुलमुलपना' हो सकता है, उसे सबका प्रिय बना दिया है। गाँधी इसलिए सबके प्रिय हैं, सबके

आकर्षण के केंद्र में हैं क्योंकि गाँधी से किसी को खतरा नहीं है, क्योंकि गाँधी किसी का पर्दाफाश नहीं करते। गाँधीवाद का कोई चिन्हित खाका नहीं है, गाँधीवाद अंतिम रूप में क्या है, या इसकी अंतिम सरहद कहाँ है, कोई नहीं जानता।[15]

गाँधीवाद की यह विचलनकारी उदारता (स्लिपरी फ्लैक्सिबिलटी) उसके दायरे को हीं नहीं, उसके आकर्षण को भी बढ़ाती है। इसी वजह से घोर गाँधीवादी विरोधी माहौल में भी गाँधी की पूजा हो रही है, उन्हें सम्मान दिया जा रहा है उनके प्रति पूरी दुनियाँ में आकर्षण बढ़ रहा है। यह सोचने और सोचकर हैरान होने वाली बात है कि क्या दुनियाँ में किसी और भी विचारक या विचारधारा के साथ ऐसा हो सकता है? क्या अपनी धुर पूँजीवादी, साम्राज्यवादी कारगुजारियों के बावजूद कोई मार्क्स को मसीहा की तरह याद कर सकता है? यह सिर्फ गाँधी के साथ हो सकता है। यह सिर्फ गाँधीवाद के साथ हो सकता है। मुखौटों की सबसे ज्यादा छूट गाँधीवाद के समर्थकों के लिए ही हो सकती है। सवाल उठता है कि आखिर क्यों? क्यों घोर दुर्बल विरोधी भूमंडलीय अर्थवाद के यशोगान वाले मंचों पर भी गाँधीवाद की प्रतिबद्धता के संकल्प लिये जाते हैं? क्यों धरती के अंतिम कण तक को अपने फायदे के लिए निचोड़ लेने वाले लोग बिना किसी झिझक के गाँधी को याद करते हैं, उनके दर्शन पर अमल करने की कसम खाते हैं, उनके रास्ते पर चलने का वचन लेते हैं और व्यवहार में यह सब कुछ करने की कभी सोचते तक नहीं। बिना किसी झिझक के उनका यह पाखंड पर्व निरंतर चलता रहता है और कोई उनसे सवाल नहीं पूछता।

यह सब इसलिए होता है क्योंकि गाँधीवाद के प्रति हम कभी विश्वसनीय नहीं रहे, न मन से न आचरण से। गाँधीवाद को हमने कभी कोई अहमियत नहीं दी। हम गाँधी का गुणगान भले करते रहे हों, उनके नाम पर वोट भले मांगते रहे हों, लेकिन कभी गाँधी के रास्ते पर नहीं चले और मजेदार बात यह है कि हमने कभी यह नहीं कहा कि गाँधी का रास्ता सही नहीं है। हमने कभी यह भी नहीं कहा कि गाँधी पुरातनवादी हैं और हमारी जरूरतें आधुनिक हैं, अतः गाँधी हमारी जरूरतों में फिट नहीं बैठते। अगर हम साहस के साथ ऐसा कहते तो शायद फिर भी गाँधीवाद की, गाँधी की इतनी दुर्गति नहीं होती। शायद तब गाँधीवाद इस तरह पाखंड का जरिया नहीं बनता।

जिसका बेड़ा गर्क करना हो, उसकी पूजा करने लगो, उसे महान बना दो, उसे चाहे जिस तरह से डुबाना चाहते हो डुबा सकते हो। गाँधी का हमने बेड़ा गर्क कर दिया है, दुनियाँ भी ऐसा कर रही है इसीलिए घटती आस्था के बावजूद गाँधी का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। सच्चे गाँधीवादियों के लिए यह समय कुछ ज्यादा ही सावधान रहने का है।

संदर्भ

1. जॉली सुरजीत कौर (संपा.)ः रीडिंग गाँधी, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ सं0 17
2. दिवाकर आर0आर0ः गाँधी जी लाइफ, थॉट एण्ड फिलॉसफी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1963, पृष्ठ सं0 39
3. कृपलानी, कृष्णाः गाँधी जी एक जीवनी, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ सं0 211
4. दत्ता डी0एम0ः दि फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, 1964, पृष्ठ सं0 203
5. शाह कांति (संपा.)ः रीडिंग गाँधी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1964, पृष्ठ सं0 75
6. हसन जेडः गाँधी जी एण्ड द हरिजन, श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ सं0 162
7. देवराज एन0के0ः ह्यूमनिजम इन इण्डियन थॉट, इंडस पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ सं0 77
8. वर्मा डॉ0 वेद प्रकाशः महात्मा गाँधी का नैतिक दर्शन, इन्दु प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ सं0 99
9. जोशी एम0सी0ः महात्मा गाँधी जीवन दर्शन, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ सं0 117
10. गोरे एम0एस0ः दि सोशल कॉटेस्ट ऑफ आइडियोलॉजी, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ सं0 27
11. हरिजन, 08.05.1937, पृष्ठ सं0 05
12. मंत्री गणेशः महात्मा गाँधी और डॉ0 अम्बेडकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ सं0 96
13. दि सलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खण्ड–4, 2000, पृष्ठ सं0 430
14. गाँधी राजमोहनः गाँधी : दि मैन, हिज पीपल एण्ड दि एम्पायर, युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 2006, पृष्ठ सं0 309
15. गुहा रामचन्द्रः भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, गुड़गाँव, 2011, पृष्ठ सं0 11